०१-उत्तम क्षमा धर्म

समयसार सिद्धि-02 (पूर्वार्द्ध) प्रवचन नं. – 79 पेज नं.- 446 दिनांक-06-09-1978

यह दशलक्षण पर्व का पहला दिन है न? उत्तमक्षमा। उत्तमक्षमा आदि जो दश बोल हैं, वे चारित्र के भेद हैं। चारित्र मुख्य मोक्ष का कारण है, इसलिए चारित्र के दश प्रकार के धर्म (कहे गये हैं)। आत्मा का अनुभव, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव हुआ हो और फिर उसमें चारित्र-लीनता हुई हो, उसे यह दश प्रकार का धर्म होता है। दश प्रकार के धर्म से सुख होता है, आनन्द होता है। आहाहा!

दश प्रकार का धर्म किसे कहते हैं? कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता हो। आहाहा! और इसमें अतीन्द्रिय आनन्द है, इससे अतीन्द्रिय आनन्द है, वह अतीन्द्रिय आनन्द सुखस्वरूप ही है। दश प्रकार का धर्म.... ऐसी बात है, भाई! उत्तम क्षमा कहा न? सम्यक्त्वसहित की (बात है), सम्यक्त्व बिना जो कुछ है, वह कोई क्षमा नहीं है, वह तो रूँधी हुई कषाय होती है। आहाहा! ऊपर आया है, भाई! ३९३ श्लोक।

मुनिधर्म क्षमा आदि भावों से दश प्रकार का है। सौयसार.... उससे सुख होता है, आहाहा! यह चारित्रधर्म। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता है, आहाहा! उसका नाम दश प्रकार का मुनि का धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, बापा! बहुत कठिन! है

इसमें? सौयसार.... इससे सुख होता है और इसमें सुख है अथवा सुख का सार है। यह दश प्रकार का धर्म सुख का सार, आनन्द का सार उसमें है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दकावेदन विशेष हो, उसका नाम यहाँ दश प्रकार का धर्म है। आहाहा! ऐसी व्याया.... ३९३ में है। अब ३९४, दशों में, हाँ! दशों प्रकार का धर्म.... आहाहा! यह दशलक्षणी पर्व, यहदश प्रकार का धर्म, चारित्र का भेद है। सम्यग्दर्शनसहित अनुभव औरचारित्र हुआ हो, उसमें विशेष आनन्द आता है, उसे यहाँ दश प्रकार का धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन में स्वरूप की दृष्टि होने से आनन्द का स्वाद आता है परन्तु थोड़ा है, आहाहा! और चारित्र में प्रचुर आनन्द है और उसमें क्षमादि हो.... आहाहा! उस क्षमा में तो

महा आनन्द... आनन्द आता है, समझ में आया? ऐसी बात है। इन दश धर्म में पहला उत्तम (क्षमा धर्म कहा)।

श्रोता : वीतरागभाव को धर्म कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वीतरागभाव ही यह दश प्रकार का धर्म है। यह तो उसके भेद बताये, वरना वीतरागभाव एक ही धर्म और वह चारित्र और वह दश प्रकार का धर्म, वीतरागभाव है — ऐसी बात है। यह दश प्रकार का धर्म वीतरागभाव है। आहाहा! बहुत ही राग का अभाव करके अतीन्द्रिय आनन्द के उग्र अनुभव में आनन्द आता है, उसे यहाँ दश प्रकार का धर्म कहा जाता है। यह तो क्षमा की और अमुक किया — ऐसी बात नहीं है। यह तो उत्तमक्षमा और उत्तममार्दव!

अन्तर में आत्मा आनन्द प्रभु के अन्तर अनुभव में अतीन्द्रिय स्वाद का आना, उसका नाम तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और चारित्र (अर्थात्) विशेष आनन्द का आना, उसका नाम चारित्र है। उसमें दश प्रकार के धर्म.... आहाहा! उस सुख के स्वाद में वृद्धि होती है.... आहाहा! उसका नाम (दश प्रकार का धर्म है)। बात ऐसी है।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।

उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खिमा णिम्मला होदि॥

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३९४)

जो कोई सन्त मुनि मनुष्य, तिर्यञ्च, अचेतन आदि उपसर्ग में होने पर भी तप्तायमान नहीं होते, क्रोध से तप्तायमान नहीं होते परन्तु आनन्द से उग्र आनन्द के स्वाद में आ जाये... आहाहा! उसे यहाँ दशलक्षणी पर्व में प्रथम उत्तमक्षमाधर्म कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? श्रावक को पञ्चम गुणस्थान में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों होते हैं। नियमसार में भक्ति आती है न? दर्शन — सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की श्रावक भक्ति करता है। वह भक्ति (रूप) परिणमन करता है। आहाहा! उसे यह दश प्रकार केधर्म का अंश है, मुनि को विशेष है, इसे आंशिक है परन्तु उस अंश में आनन्द का विशेष स्वाद आता है। सुखसार...! आहाहा!

शीशम की लकड़ी होती है न? शीशम.... शीशम। उसके अन्दर चिकना, कठिनसारहोता है, ऐसे ही यह सुखसार! आहाहा! उत्तमक्षमा में अतीन्द्रिय आनन्द कासार आताहै... आहाहा! उसको उत्तमक्षमाधर्म कहते हैं। उस मुनि को निर्मल क्षमा होती है,फिर दृष्टान्त दिया है। ऐसे-ऐसे मुनि हो गये हैं न? शान्त... शान्त... घानी मेंपिले.... आहाहा! इन पाण्डवों को लोहे के गहने बनाकर पहनाये.... आहाहा! अतीन्द्रियआनन्द की बाढ़ आती थी। उपसर्ग और परीषह सहन करे, उसमें सहन (करना) उसे कहते हैंकि ज्ञाता-दृष्टा रहकर आनन्द का विशेषपना प्रगट हो, उसका नाम परीषह सहन कियाकहा जाता है। आहाहा! ऐसी चीज है, भाई! वीतराग के मार्ग की पूरी लाईन में अन्तर है। यह वस्तु स्वरूप ही ऐसा है। यह इस उत्तमक्षमा का कहा।

०२-उत्तम मार्दव धर्म

कल्शामृत-102-भाग 03, प्रवचन नं. – 98, पेज नं.- 278, दिनांक-18-09-1977

आज दशलक्षण पर्व का दूसरा दिन है। मार्दव... मार्दव... उत्तम मार्दव। वैसे तो मिथ्यादृष्टि अपमान सहन करता है, मान नहीं रखता, परन्तु ये तो दृष्टि मिथ्यात्व है। यहाँ तो आत्मा आनंदस्वरूप, अनाकुल आनंद का नाथ, प्रभु, ध्रुव—उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसे उत्तम मार्दवगुण है, उसकी बात है। मिथ्यादृष्टि का र्मादव, उसे मार्दव नहीं है। यहाँ यह कहते हैं।

अब उत्तम मार्दव धर्म कहते हैं—

उत्तमणाणपहाणो, उत्तमतवयरणकरणसीलो वि।
अप्पाणं जो हीलदि, मद्दवरयणं हवे तस्स॥३९५॥

आहाहा! 'जो मुनि उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हों...' सम्यग्ज्ञान में बारह अंग आदि का ज्ञान हो। आहाहा! 'उत्तम तपश्चरण करने का जिनका स्वभाव हो..' चरण अर्थात् मुनिपने में वीतरागभाव। उत्तम तपश्चरण। तपश्चरण अर्थात् दीक्षा। दीक्षा अर्थात् चारित्र। चारित्र अर्थात् उत्तम तपश्चरण। वे उत्तम चारित्र में उत्कृष्ट होते हैं। जिनका स्वभाव ऐसा हो गया, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रिय आनंद में रमना, ऐसा मुनि का स्वभाव हो गया है। वे 'अपने आत्मा को मदरहित करते हैं—अनादररूप (निरभिमानरूप) करते हैं...' आहाहा!

वस्तुस्वरूप परमेश्वर है, ये तो दृष्टि में है, परंतु पर्याय में ज्ञान इतना उत्कृष्ट हुआ... बारह अंग आदि (का) और चारित्र की उत्कृष्ट रमणता, आनंद की बहुत हो गई, तो भी पर्याय में अपने को निंदते हैं। आहाहा! अपनी पर्याय में अपना अनादर करते हैं। अरे! तू क्या... अवधि, मन:पर्यय, केवलज्ञान दशा है। सम्यग्दर्शन बिना का ज्ञान,ये ज्ञान ही नहीं। ग्यारह अंग पढ़ा हो कि नव पूर्व पढ़ा हो। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा का आत्मज्ञान... आत्मज्ञान... (हुआ हो)। निमित्त का नहीं, राग का नहीं, पर्याय का ज्ञान नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान आत्मद्रव्य जो वस्तु, उसका ज्ञान। ये ज्ञान की बहुत उत्कृष्ट दशा हो तो भी अपनी पर्याय में अपनी निंदा करता है। अरे..! तू कहाँ पामर! कहाँ सर्वज्ञ, मन:पर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी की दशा! समझ में आया? और कहाँ तेरी बारह अंग आदि की ज्ञानदशा। इस प्रकार अपना अनादर करता है। इसका नाम निर्मानी है। आहाहा! यहाँ तो जहाँ पाँच, पच्चीस हजार श्लोक कंठस्थ किये तो हो गया, मानो चतुर और अभिमानी। समझ में आया? हमको बहुत आता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ऐसा फरमाते हैं, जिसे उत्तमज्ञान, सम्यग्ज्ञान-आत्मज्ञान हुआ है और चारित्र में भी उत्कृष्ट दशा हुई है, फिर भी पर्याय में केवलज्ञान और यथाख्यातचारित्र की अपेक्षा से अपने को अल्पज्ञ मानता है। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय में...

कार्तिकेयानुप्रेक्षा की ३१३ गाथा में आया है कि जिसे अंतर में मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का अभाव हुआ, सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण प्रगट हुआ, वह भी अपनी पर्याय में केवलज्ञान और महाश्रुतज्ञानी की अपेक्षा से अपने को तृण समान मानता है। तिनका... तिनका। आहाहा! समझ में आया? चौदह पूर्व आदि बारह अंग का ज्ञान-सम्यग्ज्ञान हुआ हो तो भी अपनी पर्याय में, अपने को तिनके के समान मानता है। वस्तु प्रभु है, परंतु मेरी पर्याय में पामरता है, बहुत पामरता है। आहाहा! मेरी ज्ञानदशा कहाँ और अवधि, मन:पर्यय आदि की ज्ञानदशा कहाँ? और मेरी चारित्र की दशा कहाँ और यथाख्यातचारित्रवंत की वीतरागदशा कहाँ? आहाहा! समझ में आया? ये तो सम्यग्ज्ञानी की बात है, हों! मिथ्यादृष्टि का ज्ञान, ये तो ज्ञान ही नहीं। ये तो परलक्षी ज्ञान, सब अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपना स्वरूप भगवान सच्चिदानंद प्रभु, इसका ज्ञान हुआ और विकास में ग्यारह अंग आदि का विकास हुआ। एक आचारांग में अठारह हजार पद और एक पद के इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक।

आहाहा..! ऐसे-ऐसे ग्यारह अंग कंठस्थ हों। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को भी ग्यारह अंग कंठस्थ हो जावें, उसकी यहाँ बात नहीं।

यहाँ तो आत्मज्ञानपूर्वक जिसे ग्यारह अंग का ज्ञान हुआ हो। आहाहा..! ये भी अपनी पर्याय में...। आहाहा..! स्वयं का अनादर करता है। ये नहीं, ये नहीं। इतना नहीं। कहाँ केवलज्ञान झलहल (जगमग) ज्योति, कहाँ मन:पर्ययज्ञान, अवधिज्ञान! इनकी अपेक्षा से अपने को (पामर मानता है)।

'मुनि को उत्तम मार्दव धर्मरत्न होता है।' है? धर्मरत्न कहा, देखो! 'मद्दवरयण' है न? पाठ में यह है। मार्दवरत्न-धर्मरत्न। आहाहा..!

भावार्थ - समस्त शास्त्रों को जाननेवाला पंडित हो तो भी ज्ञानमद न करे। वहाँ ऐसा विचारे कि मुझसे अधिक ज्ञानवाले अवधि-मन:पर्यय ज्ञानी हैं, केवलज्ञानी तो सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं। मैं कौन हूँ? अल्पज्ञ हूँ तथा उत्तम तप करे तो भी उसका मद न करे।' छह-छह महीने के उपवास करे, सम्यग्दर्शनपूर्वक करे, तो भी उसका मद न करे। 'स्वयं सर्व जाति, कुल, बल, विद्या, ऐश्वर्य और तप आदि के द्वारा सबसे बड़ा (महान) है, तो भी परकृत अपमान को भी सहन करता है...' महामुनि राजकुमार हों, चक्रवर्ती हों, (ये) मुनि (हुए) हों। आहाहा..! उनका लोग अपमान करें तो सहन करते हैं। ज्ञातापने जाननहार (रहते हैं)। आहाहा..! समझ में आया? मैं कौन? वहाँ गर्व करके कषाय नहीं करता, वहाँ उत्तम मार्दव धर्म होता है।' आहाहा..! सज्झाय (स्वाध्याय) में एक (बात) आती है, 'गर्व न करिये रे गात्रनो।' गात्र नाम शरीर का गर्व न करो। प्रभु! सज्झायमाला में आता है। श्वेताम्बर में चार सज्झायमाला हैं न। दुकान पर सब वांची हैं न। (संवत्) १९६५-६६ की साल। इसमें ये आता है। 'गर्व न करिये रे गात्रनो।' गात्र नाम शरीर। 'श्रीकृष्ण' जैसे वासुदेव महापुण्यवंत बलदेव, वासुदेव, कौशाम्बी वन में अकेले, प्यास लगी और देह छूट गयी। समझ में आता है कुछ? जिनके स्वर्ण के गढ़ और रत्नों के कंगूरे थे, ऐसी द्वारिका उनकी उपस्थिति में बलदेव और वासुदेव के सामने लपलपाती अग्नि में जलती थी। समुद्र का पानी डालें तो गैस-तेल होकर (जले)। आहाहा..! अरे..! भाई!

'श्रीकृष्ण' बलदेव से कहते हैं भाई! अपन कहाँ जाएँगे? आहाहा..! माँ-बाप को अन्दर से निकालने गये (तो) देव ने ऊपर से आकाशवाणी की कि दोनों निकल जाओ। तुम्हारे माँ-बाप नहीं निकलेंगे। पूरी द्वारिका भस्म हो जायेगी। आहाहा..! अकेले बाहर जंगल में

गये, प्यास लगी। भाई! मुझे प्यास लगी है। बलदेव से (कहते हैं)। आहाहा..! जिनकी आठ-आठ हजार देव सेवा करते थे, कहाँ गये? आहाहा..! भाई! बलदेव से कहते हैं - बंधु! मुझे प्यास लगी है, मैं चल सकता नहीं, मैं एक डग नहीं भर सकता। (बलदेव बोले)—भाई! मैं पानी लाता हूँ। आहाहा! वहाँ कहाँ लोटा-बोटा था। बड़ के पत्तों का दोना बनाकर पानी लेने गये । बड़ के पत्तों का दोना। ये तो बलदेव थे, विशाल बुद्धि वाले थे, पानी के लिए लोटा जैसा बनाया। वहाँ पीछे जरत्कुमार ने बाण मारा। हिरण जैसा लगा। वासुदेव पुण्यवंत प्राणी हैं। जिनके पैर में तो पद्ममणि दिखे, मानो हिरण हो। पैर में पद्ममणि। पैर ऐसा ऊँचा करके सोते थे। 'हिरण है'—ऐसा जानकर मारा। कौन है इस जंगल में मेरा (मेरे प्रति) अपराध करनेवाला? श्रीकृष्ण ने पुकार की। (जरत्कुमार) आया। अरेरे! प्रभु! तुम यहाँ कैसे? तुम्हारे लिए मैं बारह-बारह वर्ष तक वन में भटका। प्रभु! तुम्हारे लिए। ये क्या? भाई! आहाहा..! ये शरीर सड़ गया, चींटी हो गईं, हों! चींटी समझे! चींटी। लाखों चींटी। आहाहा..! रत्नजड़ित पलंग में सोनेवाले, आठ-आठ हजार देव सेवा करें, जिनकी हजारों पद्मिनी रानियाँ, ये अभी पीड़ा में। शरीर में चींटियाँ। शरीर का गर्व नहीं करना। प्रभु! इस शरीर का—गात्र का गर्व नहीं करना, नाथ! आहाहा..! शरीर की स्थिति ऐसी है। इसी प्रकार तू ज्ञान का और चारित्र का गर्व नहीं करना। समझ में आता है कुछ? आहाहा..! ये मार्दवधर्म (का) थोड़ा पाठ (लिया)।

०३-उत्तम आर्जव धर्म

कलशामृत-102, भाग 03, प्रवचन नं. – 99, पेज नं.-290, दिनांक-19-09-1977

दशलक्षण पर्व का आज तीसरा दिन है। उत्तम आर्जव धर्म। क्षमा (पर चर्चा) हुई और मार्दव—निर्मानता (पर चर्चा)हो गई। अब सरलता—आर्जव। सरलता तो मन से, वचन से और काया से। यह भी सरलता है, यह पुण्य-बन्ध का कारण है। यह तो सरलता सम्यग्दर्शन शुद्धोपयोग, स्वयं का जो शुद्धोपयोग, शुभ-अशुभभाव जो अशुद्धोपयोग उससे रहित होकर शुद्धोपयोग में जब सम्यग्दर्शन होता है, तत्पश्चात् स्वरूप में अरागी—वीतरागी परिणति उग्रपने होती है, उसे आर्जवपना—सरलपना कहा जाता है। समझ में आता है कुछ!

(संवत्) १९८२ की साल में जब बाहर निकले थे, तब जामनगर गये थे। वहाँ तो वीरजीभाई के पिताश्री शास्त्र वाँचते थे। साधु व आर्यिकाओं को पढ़ाते थे। १९८२ की बात है। व्या□यान में कहा—देखो! तुम्हारे... कैसा? ज्ञानसागर, ज्ञानसागर पुस्तक है। उसमें ऐसा लिया है, मन सरलता, वचन सरलता, कायसरलता। अविसंवादीजोगेण। किसी को ठगना नहीं। ऐसा भाव तो पुण्यबंध का कारण है। समझ में आता है कुछ? यह सरलपना नहीं। जरा खलबलाहट हो गई थी। वीरजीभाई के पिताश्री ताराचंदभाई साधु व आर्यिकाओं को पढ़ाते थे। चलता हुआ सूत्र कहते। आदमी नरम है। यह बात पहले कही तो खलबलाहट हो गई। अरे..! महाराज! इन लोगों को... एकान्त में अकेले आये। चार प्रकार—मन सरल, वचन सरल, काय सरल—ये पुण्यबंध का कारण? तो धर्म क्या? बापू! धर्म दूसरी चीज़ है। देखो! तुम्हारे ज्ञानसागर में। जामनगर से प्रकाशित हुआ है, पुनातर तरफ से।

यह मन की सरलता सम्यग्दर्शन बिना, आत्मज्ञान बिना.., शुद्धोपयोग में आत्मज्ञान होता है। शुद्धोपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! वहाँ तो ये शुभाशुभ-परिणामरहित निज आत्मा पवित्र आनन्दस्वरूप (है), ऐसा भान होने के बाद स्वरूप में आनंद की रमणता होती है, इसमें सरलता अर्थात् वक्रता का अभाव होता है, उसे आर्जव धर्म कहते हैं। उत्तम आर्जव है न? उत्तम शब्द से सम्यग्दर्शन सहित लेना है। उत्तम आर्जव ये अकेला आर्जव, आर्जव—सरलता, ऐसा नहीं। बाद में बेचारे को बैठा (समझ में आया)। अंत में सुनने आये थे। ये तो दूसरा मार्ग है। अभी तक तो हम ऐसा कहते थे, इस प्रकार है, इस प्रकार है। मन में सरलता करना, वाणी में सरलता, काया में सरलता (करना)। बापू! ये तो शुभभाव है। यह परलक्षी शुभभाव बंध का कारण है। यह जो है, यह तो मोक्ष के कारण की बात चलती है।

Mein Vartmaan Mein Hi "Gyan, MokshSwarupi Hu" Aisa Nirantar Anubhav ho wohi Saralta hai

जो चिंतेइ ण वंकं, कुणदि ण वंकं ण जंपए वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जवधम्मो हवे तस्स॥३९६॥

अर्थ – जो कोई मुनि मन में वक्र चिंतन नहीं करे,... आहाहा..! सरल बालक की तरह अपने दोष को जानता है और गुरु के पास अपना दोष कहने में जिसका बालकपना है। आहाहा..! सरलपना जिसका है। आत्मज्ञान सहित निज-आनंद की धारा बहती है। आहाहा..! उसे अंदर में वक्रता नहीं होती, इसे यहाँ आर्जव—सरलता धर्म कहते हैं। आहाहा..! है? 'मन में वक्र चिंतन न करे, काया से वक्रता न करे, वचन से वक्र न बोले तथा अपने दोष को गोपे नहीं—छिपावे नहीं...' आहाहा! अपने में जितना-जितना शुभाशुभभाव का दोष होता है तो ये दोष है। ये गुरु के पास प्रगट करता है। मुझे ऐसा भाव आया। इस प्रकार सरलतापूर्वक गुरु को दोष बताता है। है? 'उन मुनिराज को उत्तम आर्जव धर्म होता है।' नीचे है।

'अपना दोष छिपाये नहीं, परंतु जैसा हो वैसा बालक की तरह गुरु से कहता है, वहाँ उत्तम आर्जव धर्म होता है।' अपने दोष का बचाव न करे कि इस कारण से मुझे करना पड़ा। नहीं। आहाहा..! शुभभाव आदि, अशुभभाव आदि, दोनों दोष के कारण हैं। गुरु के पास सरलता से प्रगट करता है। अपने में वक्रता एक क्षण भी नहीं रखता। इसे सम्यग्दर्शन सहित सरलता कहते हैं। समझ में आता है कुछ? यह तीसरा बोल हुआ।

०४-उत्तम शौच धर्म

समयसार सिद्धि-02 (पूर्वार्द्ध), प्रवचन नं. – 81, पेज नं.- 474, दिनांक-09-09-1978

(दशलक्षण पर्व का) चौथा (दिन) उत्तम शौच — शौच। चार आ गये न पहले? क्रोध से विरुद्ध उत्तम क्षमा, मान से विरुद्ध मार्दव, माया से विरुद्ध सरलता, लोभ से विरुद्ध शौचता — निर्लोभता, वह आज चौथा दिन है।

समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्वलोहमलपुंजं।

भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं॥३९७॥

मुनि की व्याख्या है न मुख्य तो, उसे जानना तो चाहिए न? मुनि के चारित्र धर्म में दस प्रकार के धर्म जो आनन्ददाता सुखस्वरूप सुख का जिसको अनुभव होता है, उसको यह उत्तम धर्म होता है। आहाहा! जो मुनि समभाव — कंचन और तृण दोनों के प्रति जिनको समभाव है क्योंकि वे तो ज्ञेय हैं। कंचन हो या तृण हो, तिनका हो, उन्हें यह ठीक है और यह अठीक, उनमें ऐसा कुछ नहीं, वे तो ज्ञेय हैं। अत: सब में समभाव और सन्तोष (होता है) और आत्मा में आनन्द की प्राप्ति करना, यह सन्तोष... आहाहा! यह है। सन्तोष अर्थात् यह राग को घटाकर सन्तोष यह ठीक, परन्तु मूल तो अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट करना, उसमें सन्तोष मानना। मैं सुखरूप हूँ, मैं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप हूँ, उसका नाम शौचधर्म / निर्लोभ धर्म कहा जाता है। आहाहा!

तिह्वलोहमलपुंजं — तृष्णा और लोभ, भविष्य की किसी पदार्थ की इच्छा वह तृष्णा (है और) लोभ — वर्तमान प्राप्त पदार्थ में इच्छा, वह लोभ है। समझ में आया? भविष्य में पदार्थ मिलने की इच्छा, वह तृष्णा और वर्तमान प्राप्त पदार्थ में लोभ — उसका नाम यहाँ लोभ कहते हैं। दोनों मल को धोवे — एक बात। भोजन की गृद्धि, दूसरा तो मुनि को है नहीं; एक आहार है, आहाहा! उसकी गृद्धि अतिचाररहित हो, उस मुनि का चित्त निर्मल होता है, आनन्द होता है, उनको उत्तम शौच धर्म होता है। लो, समभाव की व्याख्या आ गयी। मुनि को केवल आहार का ग्रहण है, उसमें भी तीव्रता नहीं। लाभ, अलाभ, सरस-नीरस में समबुद्धि रहते हैं, तब उत्तम शौचधर्म होता है।

वर्तमान लोभ के चार प्रकार — (१) जीवितव्य का लोभ, (२) आरोग्य रहने कालोभ, आहाहा! (३) इन्द्रियाँ बनी रहने का लोभ, इन्द्रिया अनुकूल रहने का लोभ और (४)

उपभोग का लोभ — ये चारों अपने और अपने सम्बन्धी स्वजन, मित्र आदि के दोनों के चाहने से आठ भेद होते हैं। आहाहा! इसलिए जहाँ सब ही का लोभनहीं होता.... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... और आनन्द। इसका नाम यहाँ शौच अर्थात्पवित्र धर्म कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? यह चौथे बोल की — सन्तोष की (उत्तम शौचधर्म की) बात हुई।

०५-उत्तम सत्य धर्म

समयसार सिद्धि-02 (उत्तरार्द्ध), प्रवचन नं. – 82, पेज नं.- 03, दिनांक-10-09-1978

पाँचवाँ बोल है न?

जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।

ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो ॥३९८॥

जो मुनि.... मुनि के चारित्र के भेद हैं न! यह चारित्र के भेद हैं, ये दस प्रकार। मुनि! जिनसूत्र के ही वचन को कहते हैं, जिनसूत्र के ही वचन को कहते हैं। उसमें जो आचारादि कहा गया है, उसका पालन करने में असमर्थ हो तो भी अन्यथा नहीं कहते। आहाहा! कि यह मैं भलीभाँति पालन नहीं कर सकता, मुझे दोष लगता है – इस प्रकार जिनवाणी जो कहती है, तदनुसार कहते हैं, अपनी स्वच्छन्दता से नहीं कहते। आहाहा! पालन करने में असमर्थ हो तो भी झूठ नहीं कहते। आहाहा! और जो व्यवहार से भी अलग नहीं कहते। आहाहा! व्यवहार बोल है, उसमें भी असत्य नहीं कहते। बोलचाल-गृहस्थ के साथ बात चलती हो, व्यवहार में भी झूठ नहीं कहते, वे मुनि सत्यवादी हैं। दस प्रकार लिये हैं, उनमें दस प्रकार से नामसत्य, द्रव्यसत्य, भावसत्य इत्यादि उसमें। अपनी बात तो यह है कि सत्यस्वरूप भगवान! जानने में आती है जो चीज, उससे जाननेवाले को जानना, वह सत्य है। आहाहा! क्या कहा?

ParLaksh = Par + Laksh (Gyan) woh 'SATYA' hai.

जो चीज जानने में आती है, उसको जानते हैं और मानते हैं कि मैंने उसे जाना, परन्तु जाननेवाला अलग है, जाननेवाले को नहीं जाना। आहा! यह सत्य है — जाननेवाले को जानना, जाननेयोग्य को जानना - इसे छोड़कर... आहाहा!

श्रोता : जाननेवाले को जानना, यह तो शुद्ध उपयोग हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने में जो चीज आती है — ज्ञेय, वह भी तो दूसरी चीज है परन्तु जाननेवाला कौन है? आहाहा! वह तो अन्तर्लक्ष्य करे तो जाननेवाले को जान सकते हैं। परलक्ष्य में तो जाननेयोग्य चीज जानने में आती है, वह तो पर है। आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार वेदन में आनेयोग्य को वेदते हैं-जानते हैं। वेदन में आना... परन्तु वेदन करनेवाली जो चीज है... आहाहा! परम सत्य तो वह है। समझ में आया? भगवानपरमसत्यार्थ जो भूतार्थ वस्तु है, उसको नहीं जाना और पर को जानने में रुक गया...आहाहा! और पर का वेदन होता है, भले ही राग का भी... पर के लक्ष्य से शरीर का ऐसा-ऐसा वेदन ऐसा दिखता है न राग, राग.... परन्तु वेदन करनेयोग्य को वेदन किया, जाना... आहाहा! परन्तु भगवान! वेदन करनेवाली चीज कौन है? आहाहा! उसको जानना, वह सत्यवस्तु है। आहाहा! समझ में आया? विशेष अधिकार है अन्दर दस बोल में। अब चलता अधिकार।

समयसार! आहाहा! परमसत्य प्रभु! यह दूसरे प्रकार से बात की है, वरना तो सत्यार्थ जो भूतार्थवस्तु है... आहाहा! उसको जानना, वह सत्य है। आहाहा! बाकी पर को जानने में रुकता है तो पर को जाना परन्तु जाननेवाला कौन है? — उसको नहीं जाना वह असत्य है। आहाहा! समझ में आया?

०६-उत्तम संयम धर्म

समयसार सिद्धि-02 (उत्तरार्द्ध), प्रवचन नं. – 83, पेज नं.- 16, दिनांक-11-09-1978

पहले चारित्र का भेद है। चारित्र किसको होता है? जिसे आत्मा, राग के विकल्प से भिन्न — चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह राग है; वह धर्म नहीं है —

उससे भिन्न अपना आत्मा आनन्दस्वरूप-ज्ञायकस्वरूप परमब्रह्म आनन्द, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो शुद्ध आत्मा परमानन्द देखा, ऐसा जो अनुभव करे, उसका नाम सम्यग्दृष्टि धर्मी — पहली श्रेणी का कहा जाता है। फिर स्वरूप में यह अनुभव होने के बाद अन्दर का रस-आनन्द का रस चढ़ा, उसमें लवलीन होता है, उसे चारित्रदशा-वीतरागदशा उत्पन्न होती है। उसके दश प्रकार हैं। सूक्ष्म बात है, क्या हो? छठवाँ बोल है, आज छठवाँ दिन है न? 'उत्तम संयम'। उत्तम संयम — ऐसा क्यों कहा? कि अपना आनन्दस्वरूप भगवान के अनुभवपूर्वक सम् - सम् स□यक् अनुभवपूर्वक, यम - अन्तरस्वरूप में विशेष रमणता / लीनता को संयम कहते हैं। आहाहा! उसमें यह छठवाँ बोल —

जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।

तणछेदं पि ण इच्छदि संजमधम्मो हवे तस्स॥३९९॥

आहाहा! यह सब मुनि की मुख्यता से बात है न? दशलक्षण पर्व मुनि कीमु□यतासे है। चारित्र है, (वह) मोक्ष का कारण है। वह चारित्र कोई यह क्रियाकाण्ड — नग्न हो जाना या पंच महाव्रत पालना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! चारित्र तो अतीन्द्रियआनन्द में अन्दर घुस जाना, गुफा में प्रवेश हो जाना — ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द में लीन हो जाना... आहाहा! उसका नाम संयम और चारित्र कहते हैं। संयम का भेद नहीं आया? जीवों की रक्षा में तत्पर — यह निमित्त से कथन है। मुनि को जीव की रक्षा का हेतु नहीं है। समझ में आया? परजीव को दुःख न हो — ऐसे अप्रमादभाव से रहकर कोई विकल्प आया (कि) पर को दुःख न देना, वह जीव की दया सहज हो जाती है। जीव की रक्षा करना, यह तो आत्मा कर नहीं सकता। भाषा (में) तो निमित्त से कथन है। समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में है (सातवें) अधिकार में, संवर (तत्त्व सम्बन्धी भूल में) मोक्षमार्गप्रकाशक (में है कि) समिति में जीव की रक्षा का हेतु नहीं है। आहाहा! देखकर चलना, चलना उसमें जीव की रक्षा का प्रयोजन नहीं है क्योंकि आत्मा, जीव की

रक्षा कर ही नहीं सकता। आहाहा! तब तीव्र राग की आसक्ति छोड़कर, गमनागमन में ध्यान रखना, सावधानी रखना, उसका नाम जीव की रक्षा की — ऐसा कहा (जाता है)। जीव की दया पाली... कौन पाले पर की (दया)? आहाहा! यहाँ यह भाषा ऐसी ली है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में इससे इनकार किया है, संवर (तत्त्वसम्बन्धी भूल प्रकरण में सातवें) अधिकार में कि पर की रक्षा के हेतु मुनि आत्मज्ञानी-ध्यानी चलते हैं तो जीव की रक्षा का प्रयोजन समिति में नहीं है। ईर्यासमिति में यह प्रयोजन नहीं है। आहाहा!

श्रोता : मुनि में बचाने की योग्यता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बचाये? अपने में तीव्रराग न होने देना और आनन्द में रहना, उसका नाम समिति है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग प्रकार का है, भाई! आहाहा! युगलजी! यह मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में आता है, संवर... (सातवें) अधिकार - पाँच समिति, तीन गुप्ति... संवर कहा न! नहीं तो कोई ऐसा मान ले कि जीव की रक्षा करने में ध्यान रखना... यह समिति है ही नहीं।

श्रोता : ईर्यासमिति में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आता है न? पता है न, है यहाँ तो, जीव रक्षण शब्द पड़ा है, यह तो व्यवहार का कथन है परन्तु पर जीव को जरा भी दुःख न देना, पीड़ा न देना — ऐसा अप्रमादभाव उसका नाम यहाँ संयम कहा गया है। आहाहा! बहुत कठिन!

पुनश्च, गमनागमन आदि सब कार्यों में.... मुनि किसे कहें बापू! मुनिपना तो अभी... आहाहा! जिसे आत्मज्ञान-आत्मा का अनुभव हुआ हो और फिर आत्मा में लीनता हो गयी हो और जिसकी दशा बाह्य में नग्न हो जाये। आहाहा!

श्रोता : वस्त्र छोड़ना पड़ता है या नहीं, वस्त्र तो छोड़ना पड़ता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र कौन छोड़े? छूट जाते हैं। आहाहा! वस्त्र तो जड़ हैं, उन्हें नीचे उतारना, वह आत्मा की क्रिया नहीं है, आत्मा कर नहीं सकता। सूक्ष्म बात है भाई! वीतरागमार्ग अभी बहुत फेरफार कर डाला है। कहा था न एक बार? चाँदमलजी के साथ चर्चा हुई, वे कहते थे — वस्त्र तो उतारते हैं न? कपड़े क्या, वे तो जड़ हैं। जड़ का उतारना, वह क्रिया आत्मा कर सकता है? और वस्त्र ओढ़ना यह आत्मा कर सकता है? वह तो जड़ की क्रिया है। क्या? आहाहा!

यहाँ कहा — **गमनागमन कार्य में तृण का छेदमात्र न चाहता...** आहाहा! एक तिनका–तृण, उसके दो टुकड़े हों, वह भी जीव की इच्छा नहीं है। आहाहा! क्योंकि तृण का टुकड़ा हो, वह आत्मा नहीं कर सकता। एक तिनका है न तिनका? उसके दो टुकड़े आत्मा नहीं कर सकता, वह तो जड़ की क्रिया है।

श्रोता : तब तो रोटी के टुकड़े भी नहीं करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटी के टुकड़े भी नहीं कर सकता। आहाहा!

श्रोता : रोटी के टुकड़े नहीं करे तो चबाये किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : चबाये कौन? दाँत इसके (आत्मा के) नहीं हैं, दाँत हिलते हैं, वह आत्मा हिलाता ही नहीं, वह तो जड़ के कारण हिलता है, आहा! बापू! मार्ग अलग, भाई! अरेरे! समझ में आया? तृण का छेद भी न करे।

श्रीमद् तो ऐसा कहते हैं एक बार कि एक तिनके के दो टुकड़े करने की हमारी शक्ति नहीं है। श्रीमद् राजचन्द्र! एक तिनके के दो टुकड़े (करना), वह हमारी ताकत नहीं है, क्योंकि वे टुकड़े होना, वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा!

श्रोता : पूरी दुनिया वस्त्र पहनती है और उतारती है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन उतारता है और कौन पहनता है? राग करता है कि मैं कपड़े पहनूँ और कपड़े उतारूँ। राग है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया? यह टोपी मैं पहनता हूँ, ओढ़ता हूँ... मूर्खता है। टोपी जड़ के रजकण हैं, वह मैं पहनता हूँ, ओढ़ता हूँ — यह जड़ की क्रिया आत्मा कर सकता है?

श्रोता : पूरी दुनिया से उल्टा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी दुनिया से उल्टा है। वीतरागमार्ग — परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर का मार्ग पूरी दुनिया से विरुद्ध है, वह यहाँ कहते हैं। तृण का भी छेदन करे उस मुनि को संयम होता है। लो, इतनी थोड़ी बात ली है।

०७–उत्तम तप धर्म

सातवाँ दिन है आज। उत्तमतप-तप, तप धर्म कहते हैं।

इहपरलोयसुहाणं णिरवेक्खो जो करेदि समभावो।

विविहं कायकिलेसं तवधम्मो णिम्मलो तस्स॥४००॥

आहाहा! जो कोई मुनि.... यहाँ चारित्र की बात है। सम्यग्दर्शन और अनुभवसहित जिसको चारित्र-अन्तर रमणता प्रगट हुई। वैसे चारित्र में उग्र पुरुषार्थ करना, स्वरूप में रमणता का उग्र पुरुषार्थ करना, उसका नाम तप है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो! सुख-दुःख, शत्रु-मित्र, तृण-कंचन समान — राग-द्वेषरहित समभाव।

अन्तर में आनन्दस्वरूप की अनुभूतिपूर्वक स्वरूप में रमणता में उग्र पुरुषार्थ करकेवीतरागता बढ़ाना और अतीन्द्रिय आनन्द का सुख-स्वाद विशेष लेना, उसका नामतप कहा जाता है। आहा! यह व्या□या! समझ में आया? तप, मुनि को 'निर्मल' शब्दभावार्थ में है, चारित्र के लिए जो उद्यम और उपयोग करता है, वह तप कहा है। आहाहा! अन्तर में आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, उसके अनुभवपूर्वक चारित्र, अर्थात् स्वरूप में रमणता, उसमेंउग्र पुरुषार्थ करते हैं। चारित्र के लिए — अन्तर रमणता के लिए... आहाहा! उद्यम औरउपयोग करते हैं। है? उद्यम — अन्तर में उद्यम करते हैं। आनन्दस्वरूप में रमणतामें... आहाहा! वह तप कहा है। उसे भगवान तप कहते हैं। आहाहा! यह अनशन-अपवास कर डालेऔर यह कर दिये और वह तप — ऐसा नहीं। यह कहते हैं।अन्तर में आत्मा,चारित्रमें रमण करते-करते उग्र पुरुषार्थ से अन्तर में जोर करना, स्वरूप में रमणता की इस दशा को समकित सहित को उत्तमतप धर्म कहते हैं। आहाहा! यह आंशिक (चारित्र) भी सहित होता है।

आत्मा की विभाव परिणति के संस्कार को मिटाने के लिए.... मुनि को भी जरा रागादि बाकी है न, तो उन विभाव संस्कारों को मिटाने के लिए... आहाहा! उद्यम करता है। अपने शुद्धात्मस्वरूप के उपयोग को चारित्र में रोकता है। देखो! आहाहा! अरे! कभी, कहीं बाहर की मानें, और मैंने यह किया, यह किया... आहाहा! शुद्धस्वरूप

उपयोग, अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप का शुद्ध उपयोग, उसमें उपयोग को–चारित्र में रोकता है। उपयोग को अन्तर रमणता में रोकता है।

अभी शुद्ध उपयोग क्या? अन्तर में विकल्प से रहित निर्विकल्प शुद्ध उपयोग, आहाहा! उसे चारित्र में रोकता है, बड़े बलपूर्वक रोकता है – ऐसा बल करना, वह तप है। यह सब व्या□या अलग! तु□हारी अपेक्षा... अर्थ है, हों! ऐसा बल करना वह तप है। आहाहा! तो बाहर का त्याग किया और कुछ पाँच महाव्रत का विकल्प, विकल्प वस्तु तो कहाँ है? यह आया। अपवास किया और हो गया चारित्र व तप। अरे भाई! वीतरागमार्ग कोई अलौकिक है। अन्दर समभाव शब्द पड़ा है न! समभाव शब्द पड़ा है। मूल श्लोक में 'समभाओ' — ऐसा आया है न 'समभाओ' ऐसा शब्द पड़ा है, वीतराग, शुद्ध उपयोग से चारित्र में रुकना, शुद्ध उपयोग में वहाँ लगा देना... आहाहा! स्वरूप की दृष्टिपूर्वक चारित्र तो है परन्तु अभी थोड़ा राग बाकी है, उसका नाश करने के लिए अपने शुद्ध उपयोग करके स्वरूप की रमणता में उपयोग को रोकना, उसको उत्तम तप कहते हैं — ऐसी व्या□या चलती है। समझ में आया? इसके भेद फिर बाह्य–अन्तरंग के (होते हैं) वस्तुस्थिति यह है।

०८–उत्तम त्याग धर्म

समयसार सिद्धि-02 (उत्तरार्द्ध), प्रवचन नं. – 85, पेज नं.- 55, दिनांक-13-09-1978

(दशलक्षण धर्म का) आठवाँ दिन है त्याग.... त्याग (धर्म)

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।

वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥

मुनि की व्याख्या है। जिन्हें अपना आत्मा ज्ञानस्वरूपी आनन्द का अन्तर अनुभव हुआ हो, तदुपरान्त स्वरूप में प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया हो, उन मुनि की

बात है, उन मुनि को त्यागधर्म है। त्याग की व्याख्या – मुनि को संसार, देह, भोग के ममत्व का त्याग है ही; अब, जिस वस्तु के साथ वर्तमान में काम पड़ता है, वह भोजन। भोजन में इष्ट भोजन को छोड़ते हैं। आहाहा! आत्मा के आनन्द के स्वाद के समक्ष इष्ट भोजन भी छोड़ देते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के... आहाहा! अनुभव और वेदन के समक्ष मुनि, प्रिय भोजन–इष्ट भोजन छोड़ देते हैं, उसका नाम त्याग है।

उपकरण के सम्बन्ध में उसमें राग–द्वेष का त्याग, जो उपकरण मिले हैं उनमें राग –द्वेष का (त्याग)। अनुकूल है — ऐसा नहीं रखते या जिसमें राग हो, और.... आहार, उपकरण, वस्ती, तीन के साथ सम्बन्ध, तीनों में राग का त्याग करते हैं। आहाहा! ममत्व का हेतु बड़ी बस्ती, मकान आदि हो तो आनन्द के स्वाद के आगे उसकी कोई कीमत नहीं है, वह बस्ती छोड़ दे उसका नाम त्यागधर्म कहा जाता है। त्याग अर्थात् यह बाह्य स्त्री, कुटुम्ब, परिवार का त्याग, वह तो है ही। संसार भोग, देह के ममत्व का त्याग तो है ही। उसकी बात है। आहाहा!

बस्ती, भोजन, और उपकरण — तीन के साथ सम्बन्ध है — तीन। तो इनके प्रति ममत्व की वृत्ति का (त्याग करते हैं)। आनन्द का स्वाद लेकर, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद... आहाहा! अनुभव में विशेष सुख का स्वाद आता है तो वह बस्ती छोड़ देते हैं। आहाहा! इसका नाम त्याग है। वह आठवाँ दिन है। आज? बुधवार, बुधवार से।

०९–उत्तम आकिंचन्य धर्म

समयसार सिद्धि-02 (उत्तरार्द्ध), प्रवचन नं. – 86, पेज नं.- 68, दिनांक-14-09-1978

दशलक्षण पर्व में आकिंचन्य। यहाँ सम्यग्दर्शन में भी, एक राग का कण भी मेरा नहीं — ऐसी दृष्टि होती है। अधिकार चलेगा। यहाँ तो मुनिपने की बात है। सम्यग्दृष्टि को राग का कण और रजकण, वह मेरा नहीं है; मैं तो ज्ञायक आनन्दस्वरूप हूँ — ऐसी दृष्टि को यहाँ

सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसको दूसरा राग-आसक्ति का होता है परन्तु वह मेरा है — ऐसा नहीं होता। यहाँ तो मुनि को आसक्ति का राग भी नहीं, यह बतलाते हैं। आहाहा! आकिंचन्य है न?

तिविहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।

लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स ॥४०२॥

जो मुनि लोक व्यवहार से विरक्त होकर 'चेयणं इधर्म स्वभाव संगम' चेतन में शिष्य और संग का ममत्व छोड़ दे... आहाहा! यह मेरा शिष्य है अथवा यह मेरा संघ है, यह भी छोड़ दे। 'चेयणं इधर्म' पुस्तक-पिच्छी, कमण्डल में भी ममत्व का जो अंश है, वह छोड़ दे। आहाहा! और अचेतन में आहार, बस्ती और देह... मुनि को आहार, रहने का स्थान और देह — उसमें से भी ममत्व छोड़ दे। चारित्रवन्त तो है, अपने स्वरूप में-आनन्द में रमनेवाला तो है परन्तु थोड़ा राग का अंश — किसी शिष्य से मेरा संघ है, मेरा शिष्य है, यह मेरा धर्म उपकरण, पिच्छी, कमण्डल, पुस्तक — इसकी भी वृत्ति ममत्व, स्वभाव के आश्रय से आनन्द का स्वाद लेने से उसे छोड़ दे। विशेष आत्मा का आनन्द का अनुभव लेने के लिए इस आसक्ति का राग भी छोड़ दे। आहाहा! 'तिविहेण' मन, वचन और काया, कृत, कारित और अनुमोदना... ऐसा मार्ग है। मुनिपना कैसा होता है? यह बतलाते हैं। समझ में आया? मुनि को वस्त्र या पात्र तो होते नहीं परन्तु शिष्य का संघ होता है या पिच्छी, कमण्डल और पुस्तक होते हैं। आहाहा! उनके प्रति भी ममत्व का अंश छोड़ दे — यह आकिंचन, मेरी कोई चीज नहीं है। आहाहा! मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाला हूँ। आहाहा! इसको दशलक्षण पर्व में आकिंचन्य धर्म कहते हैं।

मुनि को वस्त्र और पात्र तो होता ही नहीं है। (वस्त्र-पात्रवाले) वे तो मुनि हैं नहीं। समझ में आया? यह वस्त्र-पात्र रखकर मुनि मानते हैं, वह तो मुनि है ही नहीं। वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! परन्तु जिसने वस्त्र और पात्र छोड़ दिया है, परन्तु अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र चारित्र का स्वाद लिया है, आहाहा! जिसकी नग्नदशा है और

जिसको अचेतन मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि होते हैं, उनके प्रति भी 'वह मैं नहीं', मैं नहीं — यह दृष्टि तो हो गयी है। यह तो अस्थिरता का राग, वह मैं नहीं। आहाहा! अकेला वीतरागी भाव, उस वीतरागी भाव में क्रीड़ा करते हैं, आनन्द में झूलते हैं। उसको आकिंचन्यभाव कहते हैं। यह नौवाँ (धर्म) हुआ।

१०-उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

समयसार सिद्धि-02 (उत्तरार्द्ध), प्रवचन नं. – 87, पेज नं.- 81, दिनांक-15-09-1978

दशलक्षण पर्व, दसवाँ दिन है।

(उत्तम) ब्रह्मचर्य, दसवाँ, चारित्र का भेद है यह। पहले तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा राग से भिन्न है, उसकी दृष्टि-अनुभव होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। ब्रह्म अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु का, राग से भिन्न होकर अनुभव होना, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन भूमिका है; तदुपरान्त स्वरूप में-आनन्द में विशेष रमते-रमते चारित्रदशा प्रगट हुई, उसमें दशवाँ बोल उत्तम ब्रह्मचर्य है, तो वह भी ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें चर्या करना, रमना, लीन होना, उसका नाम दशलक्षण पर्व में अन्तिम ब्रह्मचर्य (धर्म) कहा जाता है।

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।

कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स॥ ४०३॥

जो मुनि, स्त्रियों की संगति को नहीं करता... आहाहा! अपने स्वरूप के संग में स्त्री का संग नहीं करता और 'नेव पस्सई रूणम' उसका रूप नहीं देखता क्योंकि विषयों में मुख्य चीज तो स्त्री है; अत: उसका संग छोड़ना और उसका रूप नहीं देखना। आहाहा! और 'काम कहादि नियतो' काम की कथा, विषय की कथा, स्मरण आदि और पहलेविषय हुआ हो, उसका स्मरण आदि छोड़ना.. आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान का

स्मरण करे या काम–भोग कथा का स्मरण करे... आहाहा! जिसको जैसा प्रेम है, उसका स्मरण करता है। आहाहा!

धर्मी को तो अपने ब्रह्मचर्य — आत्मा के प्रति प्रेम और परिणमन है। आहाहा! अत: उसके संग में रहे, पर का संग छोड़ दे — ऐसा नौ प्रकार — मन, वचन, काय, कृत–कारित अनुमोदना से करता है। आहाहा! मन से ब्रह्मचर्य पालन करता है, वाणी से कहता है और काया से उससे (अब्रह्मचर्य से) दूर रहता है। करना, कराना और अनुमोदन...आहाहा! यह अर्थ में लिया है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। आत्मा, परद्रव्यमें लीन हो, उसमें स्त्री में लीन होना मुख्य है। परद्रव्य में लीन होने में उसमें स्त्री में लीन होना मु□य है। आहाहा! तो उसका संग तो होना नहीं, नौ बाड़ ब्रह्मचर्य होता है। समझ में आया?

ब्रह्मचारी की–मुनि की बात है न! तो स्त्री के संग में स्त्री को सिखाना, उसके पास बैठना — यह बात होती नहीं है। समझ में आया? यह भी एक प्रेम और राग है, उसे छोड़ देते हैं। आहाहा!

अपना आनन्द का नाथ, भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु, अमृत का सागर, उसके संग में जा न! आहाहा! उस असंग का संग कर न... यह पर का संग क्या है तुझे? आहाहा! ऐसी बात है। इसके बाद विशेष भेद लिए हैं — संगति करना, रूप निरखना, कथा करना, रमण करना, यह सब छोड़ना। पुस्तक नहीं आया?